19_radhaballav_Layout 1 5/1/2014 4:12 PM Page 239

ऐसी कुगत भई वात्स्यायन की

राधावल्लभ त्रिपाठी

कामसूत्र पर आधुनिक निगाह

वात्स्यायन के पहले कामशास्त्र की परम्परा वेदों से चली आ रही थी, उपनिषदों ने निगूढ़ दार्शनिक चिंतन के साथ जीवन में काम के महत्त्व का प्रतिपादन किया था। वात्स्यायन भी अपने से पहले की कामशास्त्र की परम्परा की प्राचीनता से परिचित हैं। यह परम्परा सृष्टिविषयक विमर्श से आरम्भ होती है।

सृष्टि कैसे जन्मी इस प्रश्न पर गहरा विमर्श कतिपय वैदिक सूक्तों में किया गया है। इनमें नासदीय सूक्त (*ऋग्वेद*, 10.129) विशेष रूप से उल्लेखनीय है।[1] इस सूक्त के पहले चार मंत्रों का

---

[1] श्याम बेनेगल ने अपने विख्यात टेलिविज़न धारावाहिक *भारत, एक खोज* के हर प्रसंग के आरम्भ में इस सूक्त के मंत्रों का पाठ करवाया है.

19_radhaballav_Layout 1 5/1/2014 4:12 PM Page 240

अनुवाद इस प्रकार है :

उस समय न सत् था, न असत् था
न यह संसार था, न इसके ऊपर आकाश
फिर वह था कौन
जिसने इस सब को ढक रखा था?
(यदि उसने ढक भी रखा था, तो) कहाँ और किसकी सुरक्षा में?
क्या (तब सब ओर) पानी ही पानी था गहन और गम्भीर? (1)
मृत्यु नहीं थी तब
अमृतत्व भी नहीं था तब
तब फिर वह चिह्न भी तो नहीं था
जो दिन और रात की अलग अलग पहचान कराए,
कोई एक था—, जो बिना हवा के अपनी ही स्वधा से ले रहा था साँस
उससे अलग कुछ भी नहीं था। (2)
सृष्टि जब नहीं थी तब
अँधेरे की अभेद्य परतों में ढका अँधेरा भर था,
सब कुछ सब कुछ केवल जल भर था,
एक सर्वव्यापी अज्ञान जिसमें बंद सब कुछ,
इसके भीतर से अपने तप की महिमा से वह एक जन्मा। (3)
सबसे पहले उत्पन्न हुआ काम,
जो मन का पहला विकार था
कवियों ने अपने हृदय में प्रज्ञा से विचार कर
सत् की सीमाओं को असत् में पहचाना। (4)

चौथे मंत्र में काम के जन्म लेने की बात कही गयी है। सायण ने काम का अर्थ ईश्वर की सिसृक्षा (रचने की इच्छा) किया है। सायण चौदहवीं शताब्दी में भाष्य लिख रहे हैं, तब तक वेदांत आ चुका है। वे तीसरे मंत्र में अँधेरे का अर्थ आत्मतत्त्व को आवृत करने वाला मायातत्त्व या अज्ञान करते हैं। दूसरे मंत्र में स्वधा शब्द आया है, उसका अर्थ भी सायण माया ही मानते हैं। पर ऋषि जिस काल में ये मंत्र रच रहे हैं, उस काल में ईश्वर और माया जैसी कोटियाँ उनके विचारकोश में नहीं थीं। मुझे लगता है कि तीसरे मंत्र में तप की महिमा से जो एक उत्पन्न हुआ, उसी को चौथे मंत्र में काम कहा गया है। असत् निराकार या असीम है, सत् साकार और सीमित, जिसे सायण ने नामरूपात्मक जगत् कहा है। असीम निराकार के भीतर से सीमित साकार को रचने और उलट कर उस सीमित साकार में फिर असीम का अनुभव पाने की प्रक्रिया ही काम है।

मेरी राय में यह सूक्त भारतीय कामशास्त्र तथा वात्स्यायन के कामसूत्र का मूलाधार है। कुछ ज्ञानी जन इस वक्तव्य को एक सिरफिरे का बयान या हर भारतीय विचार को वेद से निकला हुआ मानने की दारुण प्रवृत्ति का फल मान सकते हैं। कम से कम वेंडी डोनिगर और भारत में सुधीर कक्कड़ जैसे उनके बौद्धिक सहयात्री ने तो इसे खिल्ली में उड़ाने लायक़ ही समझा है। *कामसूत्र* के अपने अंग्रेज़ी अनुवाद की भूमिका में इस लेखक-युगल ने ऋग्वेद (10.86.16-17) के इंद्र इंद्राणीविषयक प्रसंग का हवाला दिया है, तथा अपालासूक्त (8.91.4) का भी। पर कामशास्त्र की वैचारिक आधारभूमि ऋग्वेद के सृष्टिविषयक विमर्श में है— यह बात इन लोगों के लिए विचारार्थर नहीं रही। वेंडी डोनिगर और सुधीर कक्कड़ ने इस तथ्य के निहितार्थों पर भी विचार नहीं किया है कि वात्स्यायन ने अपने से पहले हो चुके *कामशास्त्र* के जिन आचार्यों व ग्रंथकारों की नामावली अपने *कामसूत्र* के आरम्भ में दी है, उनमें तीसरे क्रम पर उद्दालक के पुत्र श्वेतकेतु हैं, जो एक वैदिक ऋषि हैं।

19_radhaballav_Layout 1 5/1/2014 4:12 PM Page 241

उद्दालक, श्वेतकेतु और उनका कामशास्त्र

श्वेतकेतु गौतम के वंशज और अरुण ऋषि के पोते थे। इनके पिता का नाम उद्दालक था। अरुण के पुत्र होने के नाते इन्हें आरुणि भी कहा जाता है। याज्ञवल्क्य, वाजसनेय तथा कौषीतक जैसे ऋषियों का उद्दालक के शिष्य के रूप में उल्लेख है, हालाँकि *शतपथ ब्राह्मण* में शास्त्रार्थ में याज्ञवल्क्य के द्वारा इनके पराजित होने का भी उल्लेख है। *शतपथ ब्राह्मण* के अतिरिक्त अनेक उपनिषदों में उद्दालक के बारे में जानकारियाँ हैं। *छांदोग्य उपनिषद्* (1.8) के अनुसार उद्दालक ने ब्रह्मविद्या की शिक्षा राजा प्रवहण जैवलि के पास जा कर उनसे पायी। उद्दालक का मूल स्थान कुरुपांचाल देश कहा गया है। महाभारत में ही अरुण ऋषि के पुत्र आरुणि की कथा है, जो ऋषि अयोद धौम्य के आश्रम में अध्ययन करते थे, और जिन्हें धौम्य ने खेत की मेड़ बाँधने भेजा, तो मेड़ से बहते पानी को रोकने में असमर्थ होने पर वे रात भर स्वयं मेड़ पर लेटे रह गये। उनके गुरु ने ही उनके इस असाधारण कार्य से प्रसन्न होकर उनका नाम उद्दालक रखा।

बृहदारण्यक उपनिषद् (6.4.33) में श्वेतकेतु का उल्लेख पांचालदेश में हुए एक ब्रह्मोद्य (शास्त्रार्थसभा) में सम्मिलित ज्ञानियों में किया गया है। श्वेतकेतु का प्राचीन उल्लेख *शतपथ ब्राह्मण* में मिलता है।[2] *कौषीतकी ब्राह्मण* में इनका और इनके पिता उद्दालक का मत सदस्य नामक सत्रहवें

वेंडी डोनिगर और सुधीर कक्कड़ ने इस तथ्य के निहितार्थों पर भी विचार नहीं किया है कि वात्स्यायन ने अपने से पहले हो चुके कामशास्त्र के जिन आचार्यों व ग्रंथकारों की नामावली अपने कामसूत्र के आरम्भ में दी है, उनमें तीसरे क्रम पर उद्दालक के पुत्र श्वेतकेतु हैं, जो एक वैदिक ऋषि हैं।

पुरोहित के दायित्व के विषय में निर्णायक मत के रूप में उद्धृत किया गया है। श्वेतकेतु प्रचलित प्रथाओं और रिवाजों को चुनौती देने वाले तथा नया सोच रखने वाले ऋषि थे। उस समय ब्रह्मचारियों के लिए एक नियम था कि वे मिठाई नहीं खाएँगे। *शतपथ ब्राह्मण* के ही अन्य उल्लेख के अनुसार श्वेतकेतु ने अपने अध्ययनकाल में ही शहद का सेवन कर के इस नियम को तोड़ा। *गोपथब्राह्मण* (1.33) तथा *शांखायन ब्राह्मण* (1.33) में भी उनके उस विद्रोही कृत्य का विवरण है।[3]

बृहदारण्यक उपनिषद् में प्रवहण जैवलि तथा जनक इन दो राजाओं से उनके संवाद का भी वर्णन है। श्वेतकेतु ने अपने पिता की यज्ञपरायणता को भी चुनौती दे डाली थी। *आपस्तम्भ धर्मसूत्र* में श्वेतकेतु का अवर के रूप में उल्लेख है।

श्वेतकेतु की बहन का नाम सुजाता था। सुजाता का विवाह कहोटक से हुआ। अष्टावक्र सुजाता और कहोटक के बेटे थे। सुजाता श्वेतकेतु से बड़ी रही होगी, क्योंकि अष्टावक्र की शिक्षा दीक्षा उनके नाना उद्दालक के आश्रम में श्वेतकेतु के साथ होने का उल्लेख मिलता है। आठ जगहों पर टेढ़े मेढ़े अंगों वाले अष्टावक्र शारीरिक दृष्टि से जितने ही लाचार थे, मेधा में उतने ही प्रखर थे। जिन पिता के शाप से वे विकलांग पैदा हुए, उन्हीं के दारुण अंत का कारण बनने वाले ज्ञानी जनों को शास्त्रार्थ में पराजित कर के उन्होंने अपने पिता का बदला लिया था।

---

[2] *शतपथब्राह्मण* 11.2.7.12, ए.ए. मैकडोनॅल और ए.बी. कीथ (सम्पा.) (1912 / 1995), वेदिक टेक्स्ट, खण्ड 2 : 409.

[3] *पुराणिक इनसाइक्लोपीडिया* (1975), वेट्टम मणि, नयी दिल्ली : 780.

19_radhaballav_Layout 1 5/1/2014 4:12 PM Page 242

श्वेतकेतु बचपन और युवावस्था में कुछ चिड़चिड़े, अहंकारी और ईर्ष्यालु स्वभाव के रहे होंगे। उद्दालक ने जब उनसे कहा कि हम दोनों पिता पुत्र राजा प्रवहण जैवलि के पास जा कर ब्रह्मविद्या सीख आते हैं, तो वे पिता के साथ नहीं गये।[4] याज्ञिक विधि-विधानों की अपनी विशेषज्ञता का उन्हें अभिमान था। इसलिए जब जातुकर्ण्य नामक ऋषि को काशी, कोसल और विदेह के राजाओं ने एक साथ अपना पुरोहित बना लिया, तो श्वेतकेतु ने इस पर अपनी नाराजगी पिता के सामने ज़ाहिर की। उद्दालक तब तक ब्रह्मज्ञान का मनन करते हुए वीतराग हो चुके थे, उन्होंने बेटे से भी कहा कि एक ऋषि को भौतिक ऐश्वर्य के स्थान पर ज्ञान और विवेक हासिल करने का प्रयास करना चाहिए।

महाभारत में श्वेतकेतु को ले कर दो प्रसंग हैं। दोनों ही प्रसंग इन्हीं उद्दालक के पुत्र श्वेतकेतु से सम्बद्ध हैं, अतः श्वेतकेतु की पहचान ब्राह्मण ग्रंथों व उपनिषदों से लगातार *महाभारत* तक बराबर बनी हुई है यह स्पष्ट है। पहले प्रसंग के अनुसार बलात्कार का मुखर व कारगर विरोध करने वाले पहले ऋषि श्वेतकेतु थे।

यह प्रसंग (*महाभारत,* शांतिपर्व, अ. 35) इस प्रकार है। श्वेतकेतु ने देखा कि कोई मदमत्त ब्राह्मण, इस स्पष्ट घोषणा के साथ कि उसे सम्भोग के लिए एक स्त्री चाहिए, उनकी माँ को जबरन हाथ पकड़ कर खींच कर ले जा रहा है। श्वेतकेतु ने अपने पिता उद्दालक से कहा कि वे उस ब्राह्मण को रोकते क्यों नहीं? उद्दालक ने कहा मैं किस नियम से उसे रोक सकता हूँ, हमारे समाज में तो यही रीति है कि पुरुष को किसी भी स्त्री के साथ रमण की अपनी इच्छा पूरी करने का अधिकार है। श्वेतकेतु ने कहा कि मैं इस विधान का विरोध करता हूँ और आज से यह व्यवस्था लागू होगी कि

श्वेतकेतु ने पुरुष द्वारा एक सम्पत्ति के समान स्त्री को इस्तेमाल करने और उसके साथ उसकी इच्छा के विरुद्ध सम्भोग करने के दुराचार का विरोध किया और अपने समाज में विवाह की प्रथा को व्यवस्थित रूप दिया। वास्तव में औद्दालकि श्वेतकेतु कई अर्थों में एक क्रांतिकारी विचारक थे।

स्त्री की इच्छा के बिना कोई पुरुष रमण के लिए उसे बलात् न ले जा सकेगा। श्वेतकेतु ने पुरुष द्वारा एक सम्पत्ति के समान स्त्री को इस्तेमाल करने और उसके उसकी इच्छा के विरुद्ध सम्भोग करने के दुराचार का विरोध किया और अपने समाज में विवाह की प्रथा को व्यवस्थित रूप दिया। वास्तव में *औद्दालकि* श्वेतकेतु कई अर्थों में एक क्रांतिकारी विचारक थे। महाभारत की इस कथा की पुष्टि *कामसूत्र* के टीकाकार यशोधर ने भी की है।

दूसरा प्रसंग श्वेतकेतु की मेधा और मनीषा का और भी विलक्षण नमूना है। यह प्रसंग सुवर्चला के साथ उनके विवाह का है। सुवर्चला की कथा *महाभारत* के शांतिपर्व के 220वें सर्ग में भीष्म द्वारा कही गयी है। उसके पात्र उपनिषत्काल के हैं। सुवर्चला देवल ऋषि की पुत्री थी। रूप और गुणों में वह अनुपम थी। विवाह के योग्य होने पर पिता देवल ऋषि ने उससे पूछा— बेटी, तुझे कैसा पति चाहिए?

सुवर्चला ने कहा— पिता, मैं ऐसे युवक से विवाह करना चाहती हूँ, जो अंधा भी हो और अंधा न भी हो। आप मेरी इच्छा के अनुसार विवाह करना चाहते हैं, तो ऐसे युवक की खोज कीजिए।

---

[4] *बृहदारण्यकोपनिषत्, ईशादिदशोपनिशदः, शाङ्करभाष्यसमेताः, श्रीशङ्कराचार्यग्रन्थावली* (1964 / 1978), भाग-1, प्रथम सं. दिल्ली : 986-87.

19_radhaballav_Layout 1 5/1/2014 4:12 PM Page 243

पिता ने कहा— बेटी, यह कैसा पागलपन है? ऐसा तो युवक संसार में मिलेगा ही नहीं, जो अंधा हो भी और अंधा न भी हो।

सुवर्चला ने उसी धीर गम्भीर स्वर में कहा— इसमें किसी तरह का पागलपन नहीं है। मैंने बहुत सोच विचार कर के यह निश्चय किया है।

देवल एक सद्‌गृहस्थ थे। सुवर्चला की बात में कोई गहरा तर्क हो सकता है यह तो वे नहीं समझ पाये, पर विवाह तो करना ही था, इसलिए उन्होंने घोषणा की कि उनकी बेटी अपना वर स्वयं चुनना चाहती है। स्वयंवर के लिए तिथि निर्धारित की गयी। सुवर्चला के रूप और गुणों की प्रशंसा सुन कर दूर-दूर से ब्राह्मण युवक उससे विवाह की इच्छा लिए आये। देवल ऋषि ने सबका स्वागत किया। उनको आशा थी कि सुवर्चला अपनी ज़िद छोड़ कर उनमें से किसी एक को चुन लेगी, पर सुवर्चला ने उन सब से पूछा— क्या आप लोगों में से क्या कोई ऐसा है, जो अंधा हो भी और अंधा नहीं भी हो? मैं ऐसे ही युवक से परिणय करूँगी।

सुवर्चला की बात सुन कर विवाह के इच्छुक युवकों ने सोचा कि उनके साथ तो बुरा मज़ाक किया गया है। वे सब मन मसोस कर वहाँ से चल दिये। देवल ऋषि को भी यह अच्छा नहीं लगा, पर उन्होंने बेटी से कुछ नहीं कहा। कुछ दिनों बाद उद्दालक ऋषि के पुत्र श्वेतकेतु को इस घटना का पता चला, तो उसने सुवर्चला से विवाह का निश्चय किया। वह देवल ऋषि के आश्रम में जा पहुँचा। देवल ऋषि उसकी बुद्धिमत्ता और सद्‌गुणों से बहुत प्रभावित हुए। मन ही मन मनाने लगे कि किसी तरह सुवर्चला श्वेतकेतु को पसंद कर ही ले। सुवर्चला ने श्वेतकेतु को संदेहभरी दृष्टि देखा। उसे तुरत निराश करके भेज देने का मन नहीं हुआ। श्वेतकेतु ने कहा मुझे विदित हुआ है कि तुम ऐसे युवक से विवाह करना चाहती हो जो अंधा हो भी और अंधा नहीं भी हो। इसमें कोई संदेह नहीं कि मैं पूरी तरह अंधा हूँ और इसमें भी कोई संदेह नहीं मैं अंधा बिल्कुल भी नहीं हूँ। मुझे विश्वास है कि मैं ही वह व्यक्ति हूँ जिसे तुम खोज रही हो, और मैं भी तुम्हें खोजता यहाँ आ पहुँचा हूँ।

सुवर्चला ने कहा— भद्र! मैं जानना चाहती हूँ कि तुम किस तरह अंधे हो भी और नहीं भी हो।

श्वेतकेतु ने कहा— भद्रे! देखना, सुनना, छूना, सूँघना तथा स्वाद लेना ये पाँच ज्ञानेंद्रियों के कार्य हैं। ये सारे कार्य मेरी ज्ञानेंद्रियाँ अच्छी तरह कर सकती हैं। अत: मैं अंधा नहीं हूँ— यह सत्य है। पर देखी गयी वस्तुओं को मैं नहीं देखता, सुने हुए शब्दों को मैं नहीं सुनता, सूँघी जाने वाली गंध को मैं नहीं सूँघता, आस्वाद्य पदार्थ का आस्वाद मैं नहीं लेता अत: मैं पूरी तरह अंधा हूँ— यह भी ध्रुव सत्य है। लोक-संग्रह की दृष्टि से मैं इंद्रियों को अपने अपने काम करने देता हूँ, पर उनके कामों से मैं निर्लिप्त हूँ।

श्वेतकेतु के कथन से सुवर्चला प्रभावित और संतुष्ट हुई। उसने कहा मैंने तो अपने मन से तुम्हें अपना ही लिया है। मेरे पिता विवाह के अनुष्ठान द्वारा हमें एक दूसरे से मिला देंगे। तुम उनसे मेरा हाथ माँगो। देवल ऋषि ने बड़ी प्रसन्नता से सुवर्चला का विवाह श्वेतकेतु के साथ कर दिया।

विवाह के पश्चात् सुवर्चला और श्वेतकेतु एक स्तर पर सामान्य गृहस्थों की भाँति सुखपूर्वक रहे, उनके संतानें भी हुईं। पर उन दोनों के जीवन का एक स्तर और था, जिस पर पहुँच कर वे सामान्य जगत् के लिए अंधे थे। वे तत्त्वज्ञान की चर्चा निरंतर ही करते रहते थे। सुवर्चला कई बार श्वेतकेतु से शब्द और अर्थ के संबंधों की तात्त्विक समस्या पर बहस करती।[5] दोनों के जीवन में एक स्तर दाम्पत्य और गार्हस्थ्य का था, तो दूसरा तत्त्वचिंतन में तल्लीन रहने वाले ज्ञानियों का। इन दोनों स्तरों के बीच जब कभी तनाव बनता या खाई निर्मित हो जाती, तो सुवर्चला वाद और संवाद के द्वारा इस तनाव को शिथिल करती व खाई को पाट देती।

---

[5] विवरण के लिए राधावल्लभ त्रिपाठी (2014), *बहस में स्त्री,* सस्ता साहित्य मण्डल, नयी दिल्ली का दूसरा अध्याय देखें.

19_radhaballav_Layout 1 5/1/2014 4:12 PM Page 244

सुवर्चला का समाज श्वेतकेतु की माँ के साथ बलात्कार करने वाले समाज से अलग प्रतीत होता है। वह ऐसा समाज है, जिसमें मातृसत्ताक परम्परा के अवशेष मौजूद हैं। इसीलिए देवल अपनी बेटी की ज़िद को सम्मान देते हैं। सुवर्चला के अपने अनुरूप पति चुनने और इसके लिए युवकों से बात करने की छूट है। अपने बेटे के प्रति उद्दालक भी इसी तरह उदार हैं। वे श्वेतकेतु को सुवर्चला से विवाह करने देते हैं। ऐसा लगता है कि श्वेतकेतु के स्वभाव, दृष्टिकोण और विचारों में दूरगामी परिवर्तन सुवर्चला से विवाह के बाद उसके साथ किये गये विचार-विमर्श की वजह से आया, और वे ब्रह्मविद्या के साथ कामशास्त्र का भी व्याख्यान कर सके।

वात्स्यायन ने प्रजापति को कामशास्त्र का प्रवर्तक बताया है। प्रजापति के पश्चात् महादेव शिव के अनुचर आचार्य नंदी ने कामशास्त्र पर एक हज़ार अध्यायों में स्वतंत्र ग्रंथ का निर्माण किया। वात्स्यायन कहते हैं कि उद्दालक के पुत्र श्वेतकेतु ने इस ग्रंथ का पाँच सौ अध्यायों में संक्षिप्त रूप प्रस्तुत किया था :

तदेव तु पञ्चभिरध्यायशतैरोद्दालकिः श्वेतकेतुः सञ्चिक्षेप (का.सू. 1.1.9)।

वात्स्यायन ने यहाँ श्वेतकेतु को उद्दालक का पुत्र बताया है। उपनिषदों में भी श्वेतकेतु को उद्दालक का पुत्र कहा गया है। अतः वात्स्यायन के द्वारा उद्धृत श्वेतकेतु तथा उपनिषदों और महाभारत में वर्णित श्वेतकेतु एक ही व्यक्ति हैं— इसमे कोई संदेह नहीं। यही नहीं उपनिषद् श्वेतकेतु का संबंध कामशास्त्र से भी सूचित करते हैं। *बृहदारण्यक उपनिषद्* (vi.4.4) में उद्दालक को कामविद्या या सृष्टिविद्या का प्रवर्तक कहा गया है। इस उपनिषद् के अनुसार उद्दालक के द्वारा बताई गयी कामविद्या इस प्रकार है :

> समस्त भूतों का रस यह धरती है। धरती का रस जल है। जलों का रस हैं जड़ी बूटियाँ। जड़ी बूटियों का रस फल हैं, फूलों का रस फल हैं और फल का रस पुरुष तथा पुरुष का रस रेतस् (वीर्य) है। प्रजापति ने विचार किया कि मैं इस पुरुष की प्रतिष्ठा की रचना करूँ, तो उन्होंने नारी को रचा। उसे रच कर प्रजापति ने नीचे रखा। इसलिए स्त्री को नीचे रख कर ही उसकी उपासना करनी चाहिए। स्त्री का उपस्थ वेदी है, रोएँ बर्हि (कुश या दर्भ) हैं, त्वचा अधिषवण है, मध्य (कमर) समिधा है...[6]

उद्दालक ने यहाँ सृष्टिविद्या के अंतर्गत कामविद्या का ही प्रतिपादन किया है, और यह प्रतिपादन भी बेलाग है। ऐसा नहीं कि दर्शनशास्त्र के मुलम्मे के भीतर छिपा कर कामसूत्र परसा जा रहा है। उद्दालक के पहले *ऋग्वेद* और *अथर्ववेद* के अनेक सूक्तों में पुरुष और स्त्री दोनों की ही यौनिकता एकदम पारदर्शी शैली में प्रकट की जा चुकी थी। पर उद्दालक वेद के कवियों की तरह नहीं हैं, उनका समाज भी पुरुषसत्ताक समाज है, पर ऊपर दिये उद्धरण के बाद जो कुछ इन्होंने कहा वह पुरुष की यौनिकता का पहला उपलब्ध खुला आनुष्ठानिक प्रतिपादन है। उद्दालक ने स्त्री को नीचे लिटा कर उसके साथ सम्भोग करने की क्रिया को उपासना कहा है। रूपक के द्वारा उन्होंने याज्ञिक क्रिया के साथ इस क्रिया की समाकारिता स्थापित की है। पुरुष सूक्त (*ऋग्वेद* तथा *यजुर्वेद*) में इसी तरह के रूपक द्वारा याज्ञिक क्रिया की समाकारिता सृष्टि के निर्माण की क्रिया के साथ स्थापित की गयी है। परम तत्त्व अपने आनंद के लिए अगणित रूपों में अपना विस्तार करता है। यही सृष्टि-प्रक्रिया है। इस सृष्टि-प्रक्रिया की अनुकृति या पुनर्निर्मिति अपूर्व या आनंद की प्राप्ति के ही लिए याज्ञिक प्रक्रिया में की जाती है। उद्दालक के अनुसार याज्ञिक प्रक्रिया की अनुकृति या पुनर्निर्मिति अपूर्व या आनंद की प्राप्ति के ही लिए स्त्री की उस उपासना में की जाती है, जिसे आधुनिक दृष्टि से मैथुन या सम्भोग समझा जाता है।

---

[6] मूल उद्धरण जगदीश शर्मा (सम्पा.) (1970 /1980), *उपनिषत्सङ्ग्रहः* : 131

19_radhaballav_Layout 1 5/1/2014 4:12 PM Page 245

ऊपर श्वेतकेतु के पिता गौतम उद्दालक आरुणि का राजा प्रवहण जैवलि के पास जा कर ब्रह्मविद्या सीखने की उल्लेख किया गया है। राजा प्रवहण जैवलि ने उद्दालक को जो उपदेश दिया, उसमें अग्नितत्त्व का विस्तार से प्रतिपादन है। इसी में अग्नितत्त्व की निखिल विश्व में व्याप्ति बताते हुए राजा प्रवहण जैवलि कहते हैं—

> हे गौतम, यह पुरुष अग्नि है, उसका मुख समिधा है, प्राण धूम हैं, वाणी या शब्द ज्वाला हैं, कान अंगारे हैं, इस अग्नि देव अन्न की आहुति देते हैं, उस आहुति से वीर्य बनता है। हे गौतम, स्त्री अग्नि है। उपस्थ उसकी समिधा (यज्ञ की अग्नि का ईंधन) है, रोएँ धूम हैं, योनि उसकी ज्वाला है, वह जिसे भीतर ग्रहण करती है (शांकरभाष्य के अनुसार मैथुन की क्रिया), वे अंगारे हैं, अभिनन्द (सुख) चिंगारियाँ हैं। इसी अग्नि में देव वीर्य की आहुति देते हैं, इस आहुति से पुरुष का जन्म होता है।[7]

श्वेतकेतु का कामशास्त्र अपने पिता के कामशास्त्र से भिन्न रहा होगा, पर वह उपलब्ध नहीं है। उद्दालक और श्वेतकेतु इन दोनों पिता-पुत्रों के दृष्टिकोण में अंतर है। बृहदारण्यक उपनिषद् के ऊपर दिये गये उद्धरण में उद्दालक सम्भोग की क्रिया का सृष्टि-प्रक्रिया के अंतर्गत वर्णन करते हैं। स्त्री उसमें देह के रूप में एक निष्प्राण वेदी, रोएँ, समिधा या काष्ठ ही है। पर इसके आगे उद्दालक स्त्री से

उद्दालक स्वयं अपने सृष्टि-विज्ञान में गर्भ न ठहरे, पण्डिता पुत्री उत्पन्न हो या पण्डित पुत्र उत्पन्न हो, इस तरह की वैकल्पिक कामनाओं को बराबर वज़न दे कर इनके लिए अनुष्ठान बताते हैं। इनमें पहला विकल्प तो यही है कि गर्भ न ठहरे, पर दैहिक संसर्ग का सुख अविच्छिन्न रूप से मिले।

सम्भोगार्थी पुरुष द्वारा देहसंसर्ग की याचना करने की बात करते हैं। स्त्री के तैयार न होने पर उसे लालच देने का प्रस्ताव करते हैं और यदि फिर भी वह तैयार न हो तो उसकी लकड़ी या हाथ से पिटाई करके सृष्टि-प्रक्रिया पूरी कर लेने की संस्तुति भी करते हैं। उद्दालक ऐसा कर सकते थे, क्योंकि वे पुरुष की उस बलात्कारी मानसिकता से कहीं न कहीं जुड़े थे, जिसका प्रतिरोध श्वेतकेतु ने किया।

श्वेतकेतु ने पाँच सौ अध्यायों का कामसूत्र काग़ज़-क़लम उठा कर लिखा होगा— ऐसा मुझे नहीं लगता। वात्स्यायन कामशास्त्र के विकास की जो प्रक्रिया बता रहे हैं, वह *ऋग्वेद* के नासदीयसूक्त में बताई गयी निराकार और असीम में से साकार और सीमित को रचने की प्रक्रिया की तरह है। कामतत्त्व का जो बोध मनुष्य की चेतना में अव्याकृत और असीमित रूप में था, उसे ले एक संरचना देते हुए श्वेतकेतु ने पाँचेक सौ बातें कह डालीं— उन्हीं में श्वेतकेतु का पाँच सौ अध्यायों का कामशास्त्र था। पर *बृहदारण्यक उपनिषद्* के उद्धरण में जितना जो कुछ भी यह कामशास्त्र हमें प्राप्त है, वह *कामसूत्र* की परम्परा को समझने के लिए सूत्र देता है। इसमें स्त्री-पुरुष के संसर्ग या इतरलैंगिकता सुख के संधान या आनंद के लिए है— प्रजनन उसकी अनिवार्य शर्त नहीं है। उद्दालक स्वयं अपने सृष्टि-विज्ञान में गर्भ न ठहरे, पण्डिता पुत्री उत्पन्न हो या पण्डित पुत्र उत्पन्न हो इस तरह की वैकल्पिक कामनाओं को बराबर वज़न दे कर इनके लिए अनुष्ठान बताते हैं। इनमें पहला विकल्प तो यही है कि गर्भ न ठहरे, पर दैहिक संसर्ग का सुख अविच्छिन्न रूप से मिले।

---

[7] *बृहदारण्यकोपनिषत्, ईशादिदशोपनिशदः, शाङ्करभाष्यसमेताः, श्रीशङ्कराचार्यग्रन्थावली* (1964 / 1978), भाग -1 : 992.

19_radhaballav_Layout 1 5/1/2014 4:12 PM Page 246

इस तरह वात्स्यायन उद्दालक और श्वेतकेतु के उत्तराधिकारी हैं। उद्दालक ने स्त्री की यौनिकता या उसके यौनसुख का प्रतिपादन नहीं किया— श्वेतकेतु ने सुवर्चला के साथ हुई उन्मुक्त चर्चाओं के क्रम में जो सीखा समझा, उसके कारण उन्होंने इस पक्ष का प्रतिपादन किया होगा। वात्स्यायन अपने से बाद के कामशास्त्र के सारे ग्रंथकारों से इस अर्थ में अलग हैं कि वे श्वेतकेतु की परम्परा में स्त्री की यौनिकता को भी महत्त्व देते हैं।

यह सत्य है कि उद्दालक, श्वेतकेतु और वात्स्यायन तीनों ने पुरुषप्रधान और ब्राह्मणवादी संस्कृति के तहत अपना शास्त्र रचा। पर (कदाचित् श्वेतकेतु और निश्चित रूप से वात्स्यायन) जिस कामसूत्र की रचना करते हैं, वह कई स्तरों पर पुरुष के वर्चस्व और द्विज-संस्कृति को अतिक्रांत भी करता है। वात्स्यायन स्त्री के यौनानंद के लिए इसमें जगह बनाते हैं, और वेश्याओं की समस्याओं पर तो जितनी सहानुभूति से वे विमर्श करते हैं, वह अन्यत्र सहज सुलभ नहीं है।

मैथुन या सम्भोग की प्रक्रिया को पुराने समय में दो रूपकों के द्वारा समझा जाता रहा है। एक तो याज्ञिक प्रक्रिया का ऊपर उल्लिखित रूपक है, जिसका इस्तेमाल उद्दालक ने किया। दूसरा खेत जोतने की प्रक्रिया का रूपक है, जिसका इस्तेमाल धर्मशास्त्र (क़ानून) के ग्रंथों में हुआ है। वहाँ स्त्री की काया उपास्य नहीं है, न सम्भोग एक उपासना ही है। वहाँ स्त्री एक खेत है, सम्भोग इस खेत को जोतने की प्रक्रिया है। यदि विवाह और स्त्री के साथ किये जाने वाले दैहिक संसर्ग का प्रयोजन केवल संतान की प्राप्ति माना जाए, तो स्त्री मात्र एक खेत बन कर रह जाती है, और पुरुष हल चलाने वाला

वात्स्यायन ... जीवन के वैविध्य और समग्रता में सौंदर्य देखते हैं। प्रेम और स्त्री-पुरुष के दैहिक संसर्ग में यह वैविध्य और समग्रता होनी चाहिए। इसीलिए वे कहते हैं कि प्रेम भी वैचित्र्य (सौंदर्य और विविधता) की माँग करता है।

किसान हो जाता है। संस्कृत और प्राकृत की दलित वर्ग से जुड़ी कविताओं में शृंगार के प्रसंग में गाँव की नायिकाओं के वर्णनों या कथनों में खेती के इस रूपक का ख़ूब प्रयोग हुआ है। यदि विवाह और स्त्री के साथ किये जाने वाले दैहिक संसर्ग का प्रयोजन सृष्टि-प्रक्रिया और याज्ञिक प्रक्रिया के समान अपने को असीम बनाना और अपूर्व आनंद पाना माना जाए, तो स्त्री उपासना का अंग और पुरुष यज्ञकर्ता हो जाता है।

इस याज्ञिक रूपक में संतति की प्राप्ति एक गौण प्रयोजन हो सकता है, जिसका हासिल होना अनिवार्य नहीं है। खेत वाले रूपक में तो जुताई के कर्म की परिणति फ़सल कटने में होनी ही चाहिए। यह धर्मशास्त्रीय दृष्टि है, जो भारतीय समाज के एक बड़े तबक़े में लम्बे समय तक मान्य रही है, और अभी भी काफ़ी हद तक क़ानूनी पहलू की दृष्टि से वही प्रामाणिक है। पर वह अधूरे सत्य को ही समेट पाती है। स्त्री-पुरुष के संसर्ग का उससे बड़ा सत्य सम्भोग की प्रक्रिया को केवल जैविक प्रक्रिया न मान कर मनोजैविक प्रक्रिया और उससे और आगे एक आध्यात्मिक प्रक्रिया मानने में खुलता है। इस बड़े सत्य का साक्षात्कार श्वेतकेतु सुवर्चला के सान्निध्य के कारण कर सके होंगे। यहाँ यह भी अवधेय है कि खेती और सृष्टि-प्रक्रिया के वर्णनों में ये दोनों रूपक उलटा कर भी इस्तेमाल किये जाते रहे हैं, अर्थात् कविता में प्रस्तुत या वर्ण्य विषय खेत और फ़सल हैं, अप्रस्तुत या उपमान स्त्री के साथ किये जाने वाले दैहिक संसर्ग को बना कर उसका आरोप प्रस्तुत किया गया है। इसी तरह शैवागमों में निरूपण सृष्टि-प्रक्रिया या मुक्ति के अनुभव का करना है, उसे समझाने के लिए उपमान स्त्री के

19_radhaballav_Layout 1 5/1/2014 4:12 PM Page 247

साथ किये जाने वाले दैहिक संसर्ग को बनाया गया है। यह माना गया कि इस संसर्ग में शुक्र क्षरण की क्षणिक की अवधि में (जिसकी अवधि स्त्री के अनुभव की दृष्टि से इर्विन वेलेस अपने एक उपन्यास में सात मिनट बताते हैं), चेतना की संकुचित परिधियाँ टूट जाती हैं और असीम का अनुभव होता है। तांत्रिक साधना व याज्ञिक उपासना में यह अनुभव अपेक्षाकृत अधिक स्थायी हो सकता है।

यह सम्भव है कि श्वेतकेतु के सामने आदिम जनजातियों की वे परम्पराएँ भी रही हों, जिनमें स्त्री-पुरुष के दैहिक संसर्ग और तांत्रिक साधना के बीच रूपक का नहीं, अध्यवसाय या आइडेंडिटी का संबंध माना जाता रहा है अर्थात् यह संसर्ग याज्ञिक प्रक्रिया या तंत्रसाधना के समान नहीं, बल्कि अपने आप में तंत्रसाधना ही बन जाता है। भारत सहित एशिया के पुरानी संस्कृति वाले अन्य देशों में भी ऐसी तांत्रिक साधना की जनजातीय परम्पराएँ रही होंगी। डैन ब्राउन ने अपने उपन्यास *द विंची कोड* में मिस्र में दो हज़ार साल पहले प्रचलित हीरोस गेमोस (पवित्र विवाह) के अनुष्ठान का हवाला दिया है। यह अनुष्ठान देवमंदिरों के पूजकों और पूजिकाओं के द्वारा सामूहिक रूप से किया जाता था। यह एक आनुष्ठानिक यौनाचार होता था। इसमें सम्भोग की प्रक्रिया की अनुकृति की जाती थी, पर यह विधान था कि इस प्रक्रिया में उत्तेजना का अनुभव नहीं होना चाहिए। यह माना गया कि इसके द्वारा पुरुष आध्यात्मिक या स्वर्गीय अनुभव से गुज़रते हुए ईश्वर से साक्षात्कार करता है। यहूदियों के मज़हब में ईश्वर का जेहोवा यह नाम ही इस अनुष्ठान से आया जिसमें जे पुरुष के लिए और होवा ईव या आदिम नारी के लिए है। यदि स्त्री-पुरुष के दैहिक संसर्ग की घृणित समझी जाने वाली प्रक्रिया को इतना ऊपर उठा दिया जाएगा कि उसी में निर्वाण, ब्रह्मानंद और मुक्ति सब डूब जाएँ, तो धर्म के नाम पर होने वाले कारोबार का क्या होगा? डैन ब्राउन के उपन्यास में इस विषय का अध्यापन करने वाले प्रोफ़ेसर की बात मानें, तो हीरोस गेमोस का पवित्र अनुष्ठान चर्च की सत्ता के लिए ज़बरदस्त चुनौती था। ब्राउन ने *आईज़ वाइज़्ली शट* नामक फ़िल्म का हवाला भी दिया है, जिसमें नायक एक गुप्त दल द्वारा किये जा रहे इसी हीरोस गेमोस के अनुष्ठान को देखता है, हालाँकि (फ़िल्म के नाम के अनुरूप) फ़िल्म बनाने वालों को इस अनुष्ठान के अभिप्रायों और इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अता-पता नहीं था।[8]

उद्दालक, श्वेतकेतु, अष्टावक्र, सुवर्चला आदि को मिथकीय और अनैतिहासिक कह कर अस्वीकृत नहीं किया जा सकता। इन सब चरित्रों के प्रसंगों में उस समय जिन राजाओं का राज्य था, उनकी नामावली है। साथ ही अनेक ब्राह्मणग्रंथों, उपनिषदों तथा *महाभारत* में इनकी वंशावली को ले कर एकरूपता है।

वात्स्यायन की परम्परा

यह मानना भूल होगी कि वात्स्यायन की कृति केवल यौनविज्ञान का प्रतिपादन करती है। *कामसूत्र* के सात अधिकरणों में केवल दूसरे अधिकरण में ही चुम्बन-आलिंगन आदि सम्भोग के पूर्व और पश्चात् करणीय कृत्यों का निरूपण है। शेष अधिकरणों में पुरुषार्थ, कला, नागरिक की जीवनशैली, पत्नी के कर्तव्य, परस्त्रीगमन, वैशिक (वेश्याओं का जीवन), अंतः पुर आदि विषय प्रतिपादित हैं। वात्स्यायन का काम से आशय जीवन को सर्वांगीण रूप से सुंदर बनाने वाली जीवनपद्धति से है। वे जीवन के वैविध्य और समग्रता में सौंदर्य देखते हैं। प्रेम और स्त्री-पुरुष के दैहिक संसर्ग में यह वैविध्य और समग्रता होनी चाहिए। इसीलिए वे कहते हैं कि प्रेम भी वैचित्र्य (सौंदर्य और विविधता) की माँग करता है। वैचित्र्य द्वारा अनुराग को पनपाया जा सकता है। धनुर्वेद आदि शास्त्रों में भी वैचित्र्य की

---

[8] डैन ब्राउन ((2003), *द विंची कोड* : 334-36.

19_radhaballav_Layout 1 5/1/2014 4:12 PM Page 248

अपेक्षा रहती है, तो इस शास्त्र का तो कहना ही क्या? मेरी समझ से वैचित्र्य के दोनों अर्थ यहाँ ग्राह्य हैं— विविधता भी और सौंदर्य भी।

वात्स्यायन अपने से पहले की कई शताब्दियों की कामशास्त्र विषयक चिंतन-परम्परा को सँजो कर एक व्यवस्थित और समग्र रूप देने वाले पहले शास्त्रकार थे। इस ग्रंथ के अंत में कहा गया है कि वात्स्यायन ने इस ग्रंथ की रचना ब्रह्मचर्य को साध कर परम समाधि में स्थित रह कर की। आशय यही है कि वात्स्यायन ने इस ग्रंथ की तैयारी के लिए देश में प्रचलित कामविषयक विचारों व व्यवहारों का प्रत्यक्ष अवलोकन और अध्ययन किया होगा तथा इस विषय पर रचे गये पहले के ग्रंथों का अनुशीलन भी।

कामसूत्र एक शास्त्र है। शास्त्र के प्रकार्य दो बताए गये हैं— शंसन (डॉक्युमेंटेशन) करना और शासन (रेगुलेशन) करना। वात्स्यायन एक निर्भीक समाजशास्त्री के रूप में समाज में काम से जुड़े व्यवहार का शंसन करते हैं। वे इन व्यवहारों को नियमन करने के लिए व्यवस्था भी देते हैं। ये व्यवहार नागरिक की दिनचर्या, उत्सव, गोष्ठियों तथा अन्यान्य सांस्कृतिक कार्यकलापों से जुड़े हुए हैं। अत: इन व्यवहारों में सौंदर्यशास्त्र भी सम्पृक्त है।

समग्र दृष्टि

वात्स्यायन में एक समग्र दृष्टि पुरुषार्थों के समन्वय से बनती है। अर्थ, काम और धर्म— ये जीवन के पुरुषार्थ हैं। ये जीवन के तीन स्तरों पर हासिल होते हैं— आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक। तीनों पुरुषार्थ परस्पर अंतर्निर्भर हैं। ये जीवन में सत्य, सुंदर और शिव को मूर्त करते हैं। व्यक्ति का जीवन, समाज का जीवन और राष्ट्र का जीवन ये भी उसी तरह परस्पर अनुषक्त हैं।

कामसूत्र का आरम्भ किसी देवता की स्तुति या मंगलकामना से नहीं होता। पर वात्स्यायन न तो भोगवादी हैं, न चार्वाक के मत के अनुयायी ही। अपने ग्रंथ के पहले सूत्र में उन्होंने कहा है— धर्मार्थकामेभ्यो नम: अर्थात् धर्म, अर्थ और काम को नमन है। *कामसूत्र* का नारीवादी भाष्य करने की चेष्टा करने वाली कुमकुम राय का यह कहना सही नहीं लगता कि वात्स्यायन ने यहाँ धर्म, अर्थ और काम को देव बना कर उन्हें नमन किया है, और संस्कृत के अन्य ग्रंथों की तरह देवप्रार्थना से अपने ग्रंथ का आरम्भ किया है।[9] नम: शब्द का प्रयोग संस्कृत में सदैव प्रार्थना के अर्थ में नहीं होता। नमन करना उसकी वरीयता या श्रेष्ठता बताने के लिए भी होता है। स्वयं वात्स्यायन ने अगले सूत्र में सूचित किया है कि इनकी पूर्वपूर्वतर श्रेष्ठता बताना उन्हें अभीष्ट है।

वात्स्यायन के पूरे ग्रंथ में देवमण्डल, देवीकरण, साम्प्रदायिक अर्थ में धर्म व धार्मिक कर्मकाण्ड के लिए ज़गह ही नहीं है। वे एक अनोखे सेकुलर शास्त्रकार हैं। स्पष्ट है कि उनकी दृष्टि में जीवन और जीवन की प्रवृत्तिमूलकता सर्वोपरि है, इसलिए जीवन के इन तीन पुरुषार्थों— धर्म, अर्थ और काम की वरेण्यता के स्वीकार के साथ उन्होंने शास्त्र आरम्भ किया है। काम का संबंध एषणा या प्रवृत्ति से है, निवृत्ति से वह सम्बद्ध हो नहीं सकता। इसलिए तीन पुरुषार्थों को ही वात्स्यायन ने नमन किया है।

प्रवृत्तिमूलकता कर्म की अपेक्षा रखती है, कर्म पुरुषार्थसिद्धि का पथ प्रशस्त करता है। इसलिए वात्स्यायन जिस तरह निवृत्ति का निषेध करते हैं, उसी तरह वे लोकायतिकों (भौतिकतावादी चार्वाकों) के साथ नियतिवादियों को अपना पूर्वपक्षी (विरोधी) मान कर उनके दर्शन का प्रबल प्रतिवाद करते हैं।

धर्म (क़ानून, मर्यादाएँ तथा नीति), अर्थ (प्रबंधन व भौतिक साधन) और काम एक दूसरे के

---

[9] कुमकुम राय (2008), 'कामसूत्र पर नयी रोशनी', मेरी ई. जान और जानकी नायर (सम्पा.), *कामसूत्र से 'कामसूत्र' तक*, अनु. अभय कुमार दुबे, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली : 41.

पूरक हैं, एक दूसरे के सापेक्ष भी हैं। एक के बिना दूसरा नहीं हो सकता। इनके समन्वय से जीवन में गरिमा, पूर्णता और सौंदर्य आते हैं। वात्स्यायन इसी गरिमा, परिपूर्णता और सौंदर्य के पक्षधर हैं। काम के दो रूप वात्स्यायन ने निरूपित किये हैं— एक व्यापक स्वरूप है, दूसरा सीमित। आत्मा से संयुक्त मन के अधिष्ठान में पाँच ज्ञानेंद्रियों की संसार के विषयों में अनुकूल प्रवृत्ति काम है। इस दृष्टि से हमारे जीवन के हर कर्म में काम रमा हुआ है। सीमित अर्थ में काम दैहिक संसर्ग से होने वाली फलवती आभिमानिक प्रीति है।

श्रोत्रत्वचक्षुर्जिज्वाघ्राणानामात्मसंयुक्तेन मनसाऽधिष्ठितानां स्वेषु स्वेषु विषयेष्वानुकूल्यतः प्रवृत्तिः कामः। स्पर्शविशेषविषयात्त्वस्याभिमानिकसुखानुविद्धा फलवत्यर्थप्रतीतिः प्राधान्यात् कामः (कासू.1.2.11-12)

वात्स्यायन यह भी कहते हैं कि जिस तरह शरीर चलाने के लिए भोजन आवश्यक है, इसी तरह काम भी, और यह काम अर्थ तथा धर्म का फल है :

शरीरस्थितिहेतुत्वादाहारसधर्माणो हि कामाः। फलभूताश्च धर्मार्थयोः। (वही, 1.2.37)

पर धर्म, अर्थ और काम सामान्यतः सभी लोगों के लिए वे इन तीनों पुरुषार्थों के बीच सबसे महत्त्वपूर्ण धर्म को मानते हैं। इससे कम महत्त्व का अर्थ को और उससे भी कम महत्त्व का काम को। केवल राजा व वेश्या के लिए अर्थ सबसे महत्त्व का हो सकता है और वेश्या के लिए काम।

एषां समवाये पूर्वः पूर्वो गरीयान्।।14।। अर्थश्च राज्ञः। तन्मूलत्वाल्लोकयात्रायाः।
वेश्यायाश्चेति त्रिवर्गप्रतिपत्तिः।(वही, 1.2.15)

वात्स्यायन बार बार चेतावनी देते हैं कि काम को धर्म और अर्थ के मार्ग में विघ्न नहीं बनने देना चाहिए (देखें कासू. वही, 1.2.1-4, 1.2.2-29)। उनके ये विचार भारतीय वैश्विक दृष्टि और ऋषियों के संदेश को ही प्रतिबिम्बित करते हैं। *महाभारत* में कहा गया है :

धर्मार्थकामाः सममेव सेव्या
योह्येकसक्तः स जनो जघन्यः।
द्वयोस्तु दक्षं प्रवदन्ति मध्यं
स उत्तमो यो निरस्तत्रिवर्गे।।[10]

धर्म, अर्थ और काम— इन तीनों का समान रूप से सेवन करना चाहिए, जो व्यक्ति इनमें से केवल एक में लगा रह जाता है, वह तो पापी है। जो इनमें से दो का ही सेवन करता है, वह मध्यम है, जो तीनों में समान रूप से निरत रहे, वह उत्तम है।)

वात्स्यायन जीवन की पुरुषार्थत्रय की इसी समन्वित साधना को रेखांकित करते हैं—

एवमर्थं च कामं च धर्मं चोपाचरन्नरः।
इहामुत्र च निःशल्यमत्यंतं सुखमश्नुते।।
किं स्यात् परत्रेत्याशङ्का कार्ये यस्मिन्न जायते।
न चार्थघ्नं सुखं चेति शिष्टास्तत्र व्यवस्थिताः।।
त्रिवर्गसाधकं यत् स्याद् द्वयोरेकस्य वा पुनः।
कार्यं तदपि कुर्वीत न त्वेकार्थं द्विबाधकम्।।
(कासू. 2.39-41)

(इस प्रकार अर्थ और काम तथा धर्म का आचरण करता हुआ मनुष्य इस लोक में तथा परलोक में निर्विघ्न सुख पाता है। शिष्ट जन उसी कार्य को करणीय मानते हैं जिसमें परलोक में क्या होगा ऐसी आशंका न हो, जो अर्थ की क्षति न करे, तथा सुखकर भी हो। जो कार्य तीनों पुरुषार्थों का साधक

---

[10] *महाभारत,* भंडारकर प्राच्यविद्यासंस्थान (सम्पा), 12.161.38.

हो, उसे तो करना ही चाहिए, पर जो दो या किसी एक पुरुषार्थ की भी सिद्धि कराए, उसे भी (आवश्यकता के अनुसार) करना चाहिए, जो कार्य एक पुरुषार्थ की सिद्धि कराएगा, उससे अन्य पुरुषार्थ की क्षति होगी— यह नहीं समझना चाहिए।)

काम का मूल अर्थ संकल्प है। अपने बृहत्तर अर्थ में संकल्प जीवन को परिपूर्ण बनाने के लिए है। अपने सीमित अर्थ में भी काम को इसी बृहत्तर अभिप्राय से सम्बलित होना चाहिए। काम जीवन का उत्स और उत्सव है, यौन संसर्ग उसका एक बहुत सीमित पक्ष है। काम का स्वीकार जीवन का इसकी समग्रता में अंगीकार है। काम का एक संकुचित या हेय अर्थ कुंठित वासना है। (कासू. 5.5.36-37)। अत: समाजविमुख काम काम न हो कर विकार है। वात्स्यायन इसकी गणना मनुष्य के शत्रुओं में करते हैं। प्रत्येक मनुष्य की सामाजिक ज़िम्मेरियाँ होती हैं। वात्स्यायन ने इन्हें गणधर्म कहा है। (1.3.2-18).

जिस तरह तीनों पुरुषार्थ एक दूसरे से जुड़े हैं, और एक के बिना दूसरे की प्राप्ति सम्भव नहीं है, उसी तरह व्यक्ति और समाज भी परस्पर अनुषक्त हैं। समाजबाह्य और समाजविमुख कोई प्रेम या कोई कामसंबंध उचित नहीं हो सकता। इसलिए वात्स्यायन नागरिक को समाज के दायित्वों के परिप्रेक्ष्य में उसकी दिनचर्या का उपदेश देते हैं, यही बात वैशिक के अंतर्गत गणिकाओं को दिये गये उनके उपदेश में भी है। वे गणधर्म या व्यक्ति की समूह के प्रति जिम्मेदारी की बात करते हैं। इसी सामाजिक परिप्रेक्ष्य में वात्स्यायन के सौंदर्यशास्त्र पर विचार किया जाना चाहिए। इसमें उत्सव हैं। देवयात्रा या घटा में नागरिक की सहभागिता है, यात्रा, उद्यानगमन, व विभिन्न आयोजन हैं। कला-समस्याएँ हैं, विदग्धगोष्ठियाँ हैं, कविता और कला पर विमर्श है।

काम जीवन को सुंदर और परिपूर्ण बनाता है। यह परिपूर्णता और सौंदर्य कला द्वारा आता है। वात्स्यायन ने 64 कलाओं का विवेचन किया है। कविता, नृत्य. संगीत, चित्र आदि कलाओं में उदात्त और मनोहारी रूप में काम ही व्यक्त होता है। इस प्रकार मनुष्य की प्रतिभा का रचनात्मक उन्मेष काम का एक रूप है, स्त्री-संसर्ग से दैहिक तृप्ति इसका दूसरा रूप है, और गणधर्म तीसरा रूप, जिसका निरूपण वात्स्यायन ने विविध उत्सवों और सामाजिक कृत्यों के द्वारा किया है। घटा, गोष्ठी तथा समाज सामाजिक स्तर पर काम की अभिव्यक्ति हैं।

व्यक्तिगत स्तर पर काम की अभिव्यक्तियों को मनुष्य के सामाजिक सरोकारों के मार्ग में बाधक नहीं बनने देना चाहिए। एक शास्त्रकार के रूप में वात्स्यायान ने सम्भोग के अनेक ऐसे आसनों का विवरण दिया है जो सामान्य स्थितियों में व्यवहार्य नहीं है। इसलिए वे ऐसे सभी विवरणों के साथ चेतावनी भी देते चलते हैं शास्त्र में जो कुछ बताया गया है, वह सब का सब जीवन में व्यवहार का विषय नहीं हो जाता। स्त्री को पीड़ा पहुँचा कर भोगने के तरीक़ों पर उनकी टिप्पणी है— 'कष्टमनार्यवृत्तमनादृतमिति वात्स्यायन:' (कासू. (2.7.25)। यह सब कष्टदायक, अनार्य या नीचजनों के आचरण तथा सभ्यसमाज में अनादृत है।) औपरिष्टक (मुख मैथुन) का वात्स्यायन ने प्रतिपादन किया है, पर उसके साथ ही चेता भी दिया है कि इससे रोग होने या अशुचिता की सम्भावना है और इसे नहीं किया जाना चाहिए। (कासू. 2.9.27)। वात्स्यायन ने शंसन या दस्तावेज़ीकरण की दृष्टि से ऐसे अनेक यौनाचार निरूपित किये हैं, जो अव्यवहार्य लगते हैं। फिर प्रश्न आता है कि वात्स्यायन ने ये योग बताए क्यों हैं ? इसके उत्तर में बार-बार वात्स्यायन ने यही बात कही है कि शास्त्र के अधिकार के अंतर्गत ये योग बताए गये हैं। यह शास्त्र की शंसन विधि है, यह अनुशंसा नहीं है। शास्त्र में जो जो शंसन है, वह सब प्रयोग में भी अपनाया जाए तो अनर्थ हो जाएगा। शास्त्रार्थ व्यापक हैं, और प्रयोग एकदेशिक।

न शास्त्रमस्तीत्येवैतत प्रयोगे कारणं भवेत्।
शास्त्रार्थान् व्यापिनो विद्यात्प्रयोगांस्त्वेकदेशिकान्।

रसवीर्यविपाका हिश्वमांसस्यापि वैद्यके।
कीर्तिता इति तत किं स्याद् भक्षणीयं विचक्षणैः।
सन्त्येव पुरुषाः केचित सन्ति देशास्तथाविधाः।
सन्ति कालश्च येष्वेते योगा न स्युर्निरर्थकाः।।
तस्माद् देशं च कालं च प्रयोगं शास्त्रमेव च।
आत्मानं चापि सम्प्रेक्ष्य योगान् युञ्जीत वा न वा।।
(कासू. 2.9.41–44)

(शास्त्र में लिखा है कि ऐसा किया जाता है, तो यह प्रयोग के लिए कारण नहीं बन जाता। शास्त्र की बातें व्यापक हैं, प्रयोग एकदेशिक है (अर्थात् शास्त्रकार को तो संसार में जो कुछ होता है, उसका विवरण और विश्लेषण प्रस्तुत करना होता है, वह सब कुछ सब के लिए ग्राह्य नहीं होता)। वैद्यक शास्त्र या आयुर्वेद में कुत्ते के मांस के भी रस, वीर्य और विपाक (सेवन के परिणाम) बताए गये हैं, तो क्या इससे वह कुत्ते का मांस समझदार लोगों के लिए भक्षणीय हो जाता है? इस इस तरह के कोई कोई पुरुष होते हैं, इस इस तरह के कोई देश हैं, इस तरह का कोई समय होता जिनमें ऐसे (औपरिष्टक जैसे) प्रयोग निरर्थक नहीं कहे जा सकते। इसलिए देश, काल, प्रयोग, शास्त्र और अपने आप को परख, समझ कर इन योगों को काम में लाए, या न लाए।)

पुरुषों को कामसुख या दैहिकतृप्ति के गुर सिखाना वात्स्यायन के ग्रंथ का लक्ष्य नहीं, यद्यपि पुरुष तथा स्त्री दोनों दैहिक संसर्ग से आनंद प्राप्त करें— इसके लिए जितना विधान और विधेय हो सकता है, उसका निरूपण उनके ग्रंथ का पक्ष अवश्य है। पर काम का यह सीमित पक्ष भी जीवन के समग्र में अविंत होना चाहिए।

धर्ममर्थं च कामं च प्रत्ययं लोकमेव च।
पश्यत्येतस्य तत्त्वज्ञो न च रागात् प्रवर्तते।।
अधिकारवशदुक्ता ये चित्रा रागवर्धनाः।
तदनन्तरमत्रैव ते यत्नाद् विनिवारिताः।।
न शास्त्रमस्तीत्येतेन प्रयोगो हि समीक्ष्यते।
शास्त्रार्थान् व्यापिनो विद्यात् प्रयोगांस्त्वेकदैशिकान्।।
बाभ्रवीयांश्च सूत्रार्थानागमय्य विमृश्य च।
वात्स्यायनश्चकारेदं कामसूत्रं यथाविधि।।
तदेतद् ब्राह्चर्येण परेण च समाधिना।
विहितं लोकयात्रार्थं न रागाथोऽस्य संविधिः।।
रक्षन् धर्मार्थकामानां स्थितिं स्वां लोकवर्तिनीम्।
अस्य शास्त्रस्य तत्त्वज्ञो भवत्येव जितेन्द्रियः।।
तदेत्कुशलो विद्वान् धर्मार्थाववलोकयन्।।
नातिरागात्मकः कामी प्रयुञ्जानः प्रसिद्ध्यति।।
(वही, 7.2.53–59)

(पहले के शास्त्रों को देख कर और प्रयोगों का अनुसरण कर के इस कामसूत्र को प्रयत्नपूर्वक संक्षिप्त करके प्रस्तुत किया गया है। इसके तत्त्व को जानने वाला धर्म, अर्थ और काम को समझ लेता है, और राग के कारण वह कोई काम नहीं करता। इस ग्रंथ में राग बढ़ाने वाले जो विचित्र प्रयोग शास्त्राधिकार के कारण बताए गये हैं, उन पर इसी ग्रंथ में प्रयास के साथ पाबंदी भी लगाई गयी है (कि सामान्यतः ऐसे प्रयोग नहीं किये जाने चाहिए)। शास्त्र में विधि बताई गयी है, इस का अर्थ यह नहीं कि उसे अमल में भी लाया जाए, क्यों कि शास्त्र का विषय व्यापक है, और प्रयोग का क्षेत्र सीमित है। बाभ्रव्य के सूत्रों को समझ कर और उन पर विचार कर के वात्स्यायन ने यथाविधि इस कामसूत्र का प्रणयन किया। इस कामसूत्र ग्रंथ को वात्स्यायन ने ब्रह्मचर्य और परम समाधि में स्थित

रह कर लोकयात्रा या समाज के कल्याण के लिए रचा है, इस में बताए गये विधान राग बढ़ाने के लिए नहीं हैं। धर्म, अर्थ और काम में अपनी मर्यादा का पालन करता हुआ इस शास्त्र का जानकार जितेंद्रिय हो जाता है जो कोई विद्वान् धर्म और अर्थ का विचार कर के इसका प्रयोग करता है, वह राग में बहुत अधिक नहीं पड़ता और प्रयोग कर के सिद्धि को प्राप्त करता है।)

वात्स्यायन के प्रस्थान में काम का संबंध भी सत्य, सौंदर्य और शिवत्व से है। अगम्याप्रकरण में वे किन-किन स्त्रियों से कामसंबंध वर्जित है यह प्रतिपादित करते हैं। पारदारिक प्रकरण में वात्स्यायन ने राजाओं, मंत्रियों आदि के लिए स्पष्ट निर्देश दिया है कि वे भूल कर भी पारदारिक के प्रपंच में न पड़ें। पारदारिक के योग तो असंख्य हैं, राजा व सामंत उनका प्रयोग भी करते रहे हैं। पर लोक का हित करने की इच्छा वाला राजा इनका प्रयोग न करे। उसे तो काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह और मत्सर इन छह शत्रुओं पर विजय प्राप्त करना है, तभी वह धरती पर विजय पा सकेगा।[11]

यह विरोधाभास लग सकता है कि जो वात्स्यायन काम को जीवन का मूल स्वीकार करते हैं, वे ही उस शास्त्र को भी स्वीकार कर रहे हैं, जिसमें काम की गणना अरिषड्वर्ग में की गयी है। धर्माविरुद्ध काम जीवन में इष्ट है, वही धर्मविरुद्ध हो तो अनिष्ट हो जाता है।

वात्स्यायन ने विवरण तो समलैंगिकता व अन्यान्य असामान्य व्यवहारों का भी दिया है। पर उनकी अनुशंसा नहीं की है। यह शंसन मात्र है, शासन नहीं। धर्मशास्त्रकारों ने असामान्य कामव्यवहारों पर दण्ड की व्यवस्थाएँ की है, तथा इन्हें पाप माना है। वात्स्यायन ने असामान्य कामव्यवहार करने वालों के प्रति सहानुभूति अवश्य है, उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिए यह उन्होंने कहीं नहीं कहा है, पर धर्मशास्त्र का विरोध भी नहीं किया है।

ऐसा भी नहीं है कि अपने शास्त्र की मूल प्रतिश्रुतियों में यदि धर्मशास्त्र के विधान आड़े आते हैं, तो वात्स्यायन ने उनसे असहमति व्यक्त न की हो। मनु जैसे धर्मशास्त्रकारों के मतों के विपरीत गांधर्व को वे विवाह की सर्वश्रेष्ठ विधि मानते हैं। *मनुस्मृति* में तो गांधर्व विवाह को राक्षसविवाह से भी निचला दर्जा दिया गया है। वात्स्यायन की दृष्टि में प्रेम सर्वोपरि है। इसलिए गांधर्व (प्रेमविवाह) को उन्होंने सर्वोत्तम माना है।

वात्स्यायन का स्त्री-विमर्श

संस्कृत के प्राय: सारे शास्त्र पुरुषवादी दृष्टि से लिखे गये हैं। वात्स्यायन एक सीमा तक अपवाद हैं। उन्होंने नारी मन को जितनी सहानुभूति से परखा है, वह केवल कालिदास, बाण, भवभूति जैसे इने-गिने कवियों में ही मिलती है। यह स्वाभाविक ही है कि स्त्री के विषय में कहे गये उनके वचनों या निर्देशों की अनुगूँज इन कवियों में सुनाई पड़े। उदाहरण के लिए :

कुसुमसधर्माणि हि योषित: सुकुमारोपक्रमा:।
तास्त्वनधिगतविश्वासै: प्रसभमुपक्रम्यमाणा: सम्प्रयोगद्वेषिण्यो भवन्ति।
तस्मात् साम्नैवोपचरेत्।।
(कासू. 3.2.6)

(स्त्रियाँ फूल की तरह कोमल होती हैं। उन्हें बिना विश्वास में लिए ज़ोर ज़बरदस्ती करने पर वे हमेशा के लिए पुरुष-संसर्ग से विमुख हो सकती हैं। इसलिए स्त्री के प्रति साम के साथ उपचार किया जाना चाहिए।)

भवभूति ने अपने नाटक *मालतीमाधव* में वात्स्यायन के इस कथन को लगभग दोहराया है। यह

---

[11] तद्योषिन्मित्राश्च नागरका: स्युरिति वात्स्यायन:, *कामसूत्र,* 1.5.34.

भी ध्यान रखने की बात है कि यह सलाह वात्स्यायन ने पुरुष को नवपरिणीता के साथ व्यवहार के संदर्भ में दी है। उपचार शब्द यहाँ जिस विशिष्ट अर्थ में है वह भरतमुनि के *नाट्यशास्त्र* व कालिदास में खुलता है।

वात्स्यायन स्त्री और पुरुष में परस्पर विश्वास, प्रेम और सौहार्द को परम काम्य मानते हैं। स्त्री-पुरुष के बीच सख्य या बांधव भाव के संबंध को भी वात्स्यायन, कालिदास, बाण और भवभूति ने जिस तरह समझा है, वह हमारी शास्त्र-परम्परा और काव्य-परम्परा दोनों में अन्यत्र दुर्लभ है। स्त्री-पुरुष के बीच निर्विकार सौहार्द के संबंध को वात्स्यायन ने योषिन्मैत्री नाम दिया है।[12]

उनके विवाह के निरूपण में धर्मशास्त्र के दृष्टिकोण से इसीलिए भेद है। जो कन्या से अनुरक्त हो उसी वर को वरीयता दी जानी चाहिए।

गुणसाम्येऽभियोक्तृणामेको वरयिता वरः।
तत्राभियोक्तरि श्रैष्ठ्यमनुरागात्मको हि सः।।
(वही, 3.4.55)

(कई गुणशाली लोग एक लड़की के लिए दावेदार हों, तो जो उसे मन से चाहता है, वही दूल्हा होना चाहिए। जो अनुराग के साथ अपनी दावेदारी पेश करे, वही श्रेष्ठ है।)

इसीलिए वात्स्यायन कहते हैं कि भले ही धर्मशास्त्र की दृष्टि से गांधर्व विवाह का स्थान नीचे हो, सुखकारक, क्लेशरहित और अनुरागात्मक होने के कारण सारे विवाहों में गांधर्व को प्रवर माना जाना चाहिए।

व्यूढानां हि विवाहानामनुरागः फलं यतः।
मध्यमोऽपि हि सद्योगो गान्धर्वस्तेन पूजितः।।
सुखत्वादबहुक्लेशादपि चावरणादिह।
अनुरागात्मकत्वाच्च गान्धर्वः प्रवरो मतः।।
(वही, 3.5.29-30)

(इनमें धर्म की मर्यादा के अनुसार पहले वाला बाद वाले से प्रधान है, और पहले वाले से सम्भव न हो तभी बाद वाले और उसके भी बाद वाले का सहारा लेना चाहिए। विवाह हो जाने पर उसका फल अनुराग ही है, इसलिए सारे विवाहों में मध्यम गांधर्व विवाह अच्छे योग वाला और माननीय है। दम्पति के लिए सुखदायक होने के कारण, आसानी से सम्भव होने से, और प्रेम का सार इसी में होने से गांधर्व विवाह सारे विवाहों में श्रेष्ठ है।)

वे तो विवाहित स्त्री तक को सलाह दे देते हैं कि पति से प्रेम न मिले, तो जिस से प्रेम मिल सके, उसके पास चली जाए। जिसके पास चित्त की अनुकूलता प्रतीत हो, उसी के पास रहना उचित है।[13] पुनर्भू या दूसरा विवाह करने वाली विधवा या सधवा स्त्री को वात्स्यायन ने जितनी उदार दृष्टि से पहचान दी है, वह भी हमारी शास्त्र परम्परा में अन्यत्र नहीं है।

वात्स्यायन की कुगति

वात्स्यायन को लगभग दो हज़ार साल की भारतीय परम्परा में सुगति और कुगति दोनों मिलीं। स्त्री के भीतर पैठ कर उसके यौन-सुख की थाह लेने के उनके प्रयास और कला तथा सौंदर्य के संसार से यौनाचार को समन्वय करने के कारण जानकार और मेधावी कवियों ने उनके शास्त्र का ख़ूब रचनात्मक

---

[12] आत्मनश्चित्तानुकूल्यादिति वात्स्यायनः, *कामसूत्र*, 4.2.35.

[13] अन्य विवरणों के लिए देखें, लेखक द्वारा अंग्रेज़ी अनुवाद, भूमिका व टिप्पणियों सहित *कामसूत्र* का संपादित संस्करण (2005, नयी दिल्ली) द्रष्टव्य।

19_radhaballav_Layout 1 5/1/2014 4:12 PM Page 254

उपयोग किया। कालिदास जैसे महाकवियों के रचनालोक में वात्स्यायन रचे बसे हैं। ये कवि उनकी मान्यताओं व प्रविधियों को कलात्मक विन्यास और विस्तार दोनों देते हैं। वात्स्यायन न होते, तो कालिदास शिव और पार्वती के समागम और दोनों के ऐंद्रिय सुख का इतना सूक्ष्म वर्णन न कर पाते।

वात्स्यायन को कुगति पर पहुँचाने का सिलसिला बहुत पहले ही आरम्भ हो गया था। जो वात्स्यायन धर्म या क़ानून को अपने सारे शास्त्र से ऊपर रखते हैं, उनके लिए कुछ भी सम्मान धर्मशास्त्र ने कहीं प्रकट किया हो, ऐसा पता नहीं चलता। धर्मशास्त्रकारों की कुछ विधानों की वात्स्यायन अपने शास्त्र के अनुसार आलोचना करते हैं, और धर्मशास्त्र द्वारा गांधर्व विवाह के निचला दर्जा देना उन्हें स्वीकार्य नहीं है। पर धर्मशास्त्र ने न उनकी प्रति-समीक्षा की, न उन्हें उद्धरण के योग्य समझा। उनकी उपेक्षा कर देना ही पुरुषवादी द्विज-वर्चस्व वाले समाज को उनके शास्त्र के विस्तार को रोकने का सबसे ठीक उपाय लगा। गुप्तकाल से मुग़लकाल तक वात्स्यायन की रचना अपने संक्षिप्त संस्करणों में चित्रावली के रूप में सामंतों व राजाओं के शयनागारों में क़ैद होती गयी। अभयकुमार दुबे सही लिखते हैं :

> वात्स्यायन का दुर्भाग्य यह था कि वे अपने पूर्वगामी यौन-विशेषज्ञों की पुरुषकेंद्रीयता का उल्लंघन करते हुए कामसूत्र में स्त्री-यौनिकता का सिद्धांत प्रतिपादित करने के क़सूरवार थे। इसलिए उन्हें सारे जीवन पुरुष-यौनिकता को प्रमुख मानने वाले उन सिद्धांतकारों का कोपभाजन बनना पड़ा, जो स्त्री में कामेच्छा का केंद्र देखने के लिए तैयार नहीं थे। वात्स्यायन के युग की ज्ञान राजनीति ने यह सुनिश्चित करने की पूरी चेष्टा की कि स्त्री-यौनिकता को मान्यता देने वाला उनका ग्रंथ पुस्तकालय की आलमारियों में धूल खाता रहे।[14]

दूसरी ओर उनके *कामसूत्र* की लोकप्रियता और इस विषय का एकमात्र शास्त्र-ग्रंथ होने के कारण उसमें अपने स्वार्थ के अनुसार विधान जोड़ने की मंशा ने मूल ग्रंथ में प्रक्षेप जुड़ गये होंगे। सातवाँ अधिकरण वात्स्यायन की मूल योजना का अंग नहीं लगता। इसमें आयुर्वेद के अज़ीबोग़रीब कामवर्धक तथा लिंगवृद्धिकारक नुस्खे हैं, अदृश्ययोग में अदृश्य रहने की विचित्र विधियाँ हैं। ये पुरुषों की अतृप्त कामनाओं की कुंठाजन्य परिणतियाँ हैं। इसीलिए यशोधर जैसे प्रामाणिक टीकाकार ने इस अधिकरण की टीका नहीं की है। वात्स्यायन के पश्चात् कामशास्त्र पर अनेक ग्रंथ लिखे गये, पर उन सब में *कामसूत्र* के द्वितीय अधिकरण की ही सामग्री है, बाकी छह अधिकरण नदारद हैं। कामसूत्र के सस्ते बाज़ारू कथित अनुवादों ने तो वात्स्यायन की कुगति की पराकाष्ठा तक पहुँचाया ही, रही सही कसर कुछ आधुनिक अध्येताओं ने पूरी कर दी है। इनमें से दो हैं— वेंडी डोनिगर और सुधीर कक्कड़।

वेंडी डोनिगर और सुधीर कक्कड़ ने वात्स्यायन की किताब को *ए हिंदू टैक्स्ट बुक ऑफ़ इरॉटिक लव* कहा है।[15] काम के इन्होंने निम्नलिखित वैकल्पिक अर्थ किये है— इच्छा, प्रेम, सुख तथा यौनसंसर्ग।[16] वात्स्यायन के इस कथन पर कि यह पुस्तक उन्होंने ब्रह्मचर्य व समाधि में स्थित रह कर रची है, उन्हीं के एक वक्तव्य को उपहास के ढंग से आरोपित करते हुए इनका कहना है कि यह हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है। यह सत्य है कि कामसूत्र में दो स्तर हैं— एक वर्णनात्मक, दूसरा निर्देशात्मक। डोनिगर और कक्कड़ का यह मानना भी चिन्त्य है कि गद्य भाग में वर्णन और पद्य भाग निर्देशात्मक है। इसकी अपेक्षा कुमकुम राय ने *कामसूत्र* के इस संरचनात्मक पक्ष को ज़्यादा ठीक समझा है। वे गद्य और पद्य भाग के बीच विच्छिन्नता देखती हैं।[17] वात्स्यायन ने

---

[14] अभय कुमार दुबे (2008), 'फुटपाथ पर कामसूत्र', मेरी ई. जान और जानकी नायर (सम्पा.) (2008), *कामसूत्र से 'कामसूत्र' तक*, अनु. अभय कुमार दुबे, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली : 240-41.

[15] वेंडी डोनिगर और सुधीर कक्कड़ (2002), कामसूत्र (अंग्रेज़ी अनुवाद), परिचय : xi.

[16] वही.

[17] मेरी ई. जान और जानकी नायर : 45.

19_radhaballav_Layout 1 5/1/2014 4:12 PM Page 255

कहीं–कहीं पद्यों में विवेचन को संक्षेप करते हुए समापन किया, कहीं उन्होंने उसकी समीक्षा की और कहीं पद्य किसी पुराने या पारम्परिक मत की उद्धृति हैं।

1999 में छपे सुधीर कक्कड़ के उपन्यास दि *एसेटिक ऑफ़ डिज़ायर* को एक प्रकाशकीय वक्तव्य में वात्स्यायन के जीवन का कथात्मक विवरण कहा गया है।[18] इस से यह भ्रम हो सकता है, जैसे कक्कड़ को वात्स्यायन के जीवन चरित की मुख्य घटनाओं का प्रामाणिक ज्ञान था, और उन्हीं को आधार बना कर उन्होंने उपन्यास रचा। वेंडी डोनिगर और सुधीर कक्कड़ दोनों का वात्स्यायन के इतिहास और जीवन के विषय में सारा ज्ञान ऊपर उद्धृत वैदिक सूक्त की भाषा में कहें तो एक सर्वव्यापी अज्ञान में बंद है। अंग्रेज़ी अनुवाद की भूमिका में इन्होंने इसे स्वीकार भी किया है।[19]

कक्कड़ ने वात्स्यायन को एसेटिक या संन्यासी क्यों कहा है, जब कि संन्यास की तो वात्स्यायन के प्रस्थान में गुंजाइश ही नहीं है। न उनके प्रतिपादन से कहीं ऐसा आभास मिलता है कि वे कोई संन्यासी रहे होंगे। वात्स्यायन ने धर्म (क़ानून), अर्थ (प्रबंधन) तथा काम ये तीन ही पुरुषार्थ माने हैं। चौथे पुरुषार्थ मोक्ष और चौथे आश्रम संन्यास के लिए उनके यहाँ जगह नहीं है। उपन्यास में वात्स्यायन अपनी युवा पत्नी को देवी समझ कर पूजते रहते हैं, और उपन्यास का वर्णनकार (नेरेटर) उसे भगा ले जाता है। वात्स्यायन की उपहासास्पदता बताने के लिए कक्कड़ ने स्त्री को दिये गये उन्हीं के इस निर्देश का अपनी नायिका के द्वारा पालन अवश्य करा दिया है कि विवाहिता स्त्री जिस पुरुष में जी लग जाए, उसके साथ भाग जाए।

दलित चिंतक डॉ. धर्मवीर ने *कामसूत्र* पर कई आक्षेप किये हैं, जिनमें मुख्य हैं : कामसूत्र जिस समाज–व्यवस्था का समर्थन करता है, उसमें तलाक़ और पुनर्विवाह के लिए विधान नहीं हैं तथा वात्स्यायन जारकर्म या व्यभिचार तथा वेश्यावृत्ति का खुल्लमखुल्ला समर्थन करते हैं। अपने इन निष्कर्षों के आधार पर वात्स्यायन की दुर्गति करते हुए वे कहते हैं :

> वात्स्यायन के बारे में सुनने की ज़रूरत नहीं है, क्योंकि उन्होंने जारकर्म को खुल कर खेलने के लिए विवाहेतर संबंधों का बड़ा मैदान बना रखा है, जहाँ उनके नायक के लिए वर्णों और जातियों की कोई सीमा या शर्त नहीं रखी गयी है। यदि कोई रोक है, तो विवाह पर है, जारकर्म पर नहीं। यह कितनी ग़लत किताब है, जो औरतों के यौनशोषण के लिए तैयार की गयी है? वास्तव में कामसूत्र एक बेदद बेहूदी और गंदी किताब है, और दलितों की तरफ़ से सिरे से ख़ारिज करने लायक़ है। पर आश्चर्य की ही बात कही जाएगी कि जारकर्म की यह किताब इतनी सिलसिलेवार लिखी गयी है कि इसे शास्त्र कहने का जामा पहनाया गया है। सही बात है, द्विज संस्कृति का लेखक ही ऐसी बात लिख सकता था।[20]

धर्मवीर ने कामसूत्र को बिना मजिस्ट्रेट का जंगल राज बताते हुए उनके इस पारदारिक प्रकरण को ले कर कहा है कि इसके सूत्र परस्त्रीगमन को वाजिब ठहराते हैं। वात्स्यायन ने इस प्रकरण के अंत में स्पष्ट कहा है कि अधिकांश पुरुष धर्म और समाज के भय से परस्त्रीगमन में प्रवृत्त नहीं होते। इस पर धर्मवीर कहते हैं, 'धर्म और समाज का डर बताया गया है, लेकिन क़ानून के डर की कोई बात नहीं है।'[21] धर्मवीर यह भूल गये हैं कि क़ानून के लिए संस्कृत में जो प्रचलित शब्द रहा है वह धर्म ही है। यह बात अलग है कि धर्म क़ानून से ज्यादा बड़ा अर्थ भी देता है। धर्मशास्त्र के जितने ग्रंथ हैं, वे क़ानून

---

[18] वेंडी डोनिगर और सुधीर कक्कड़ : अंदरूनी आवरण.

[19] वेंडी डोनिगर और सुधीर कक्कड़ कामसूत्र के अंग्रेज़ी अनुवाद के परिचय : xii में कहते हैं कि इस कृति के लेखक वात्स्यायन मल्लनाग के बारे में तक़रीबन कोई जानकारी नहीं है। केवल उनका नाम पता है जिसकी सूचना उनके लेखन से मिलती है और यह भी ज़ाहिर होता है कि यह रचना उन्होंने ब्रह्मचर्य और समाधि की उच्चतर स्थिति में लिखी थी.

[20] डॉ. धर्मवीर ( ), कामसूत्र की संतानें, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली : 30.

[21] वही : 14.

19_radhaballav_Layout 1 5/1/2014 4:12 PM Page 256

की किताबें भी हैं। वात्स्यायन ने धर्म का डर बताया है, अर्थात् क़ानून का ही डर बताया है। फ़र्क़ यही है कि भारत के आज के संविधान की तरह प्राचीन काल की कोई एक क़ानून की किताब नहीं है। *मनुस्मृति* है, तो *याज्ञवल्क्य स्मृति* भी है। केवल *मनुस्मृति* का क़ानून सारे राजाओं ने लागू किया हो ऐसा नहीं है, कई देशों (आज के अर्थ में रियासतों में) याज्ञवल्क्य का क़ानून लागू किया गया।

यदि धर्मवीर की मान्यता ले कर चलेंगे तो यह भी कहा जा सकता है कि संस्कृत में अदालत के लिए भी शब्द नहीं है। कोर्ट के लिए न्यायालय और जज के लिए न्यायाधीश शब्द संस्कृत के उन्नीसवीं शताब्दी तक के साहित्य में प्रयुक्त नहीं हुए हैं। न्यायाधीश के लिए प्राचीन संस्कृत साहित्य में जो नाम है, वह है धर्माध्यक्ष। न्यायालय को धर्मस्थान कहा गया है। इस सारे संदर्भ में धर्म का अर्थ आज की परिभाषा वाला हिंदू धर्म क़तई नहीं है। आज की परिभाषा वाले हिंदू धर्म के अर्थ में तो संस्कृत के उन्नीसवीं शताब्दी तक के साहित्य में हिंदू शब्द नहीं आया है।

वात्स्यायन जहाँ शंसन कर रहे हैं, वहाँ एक समाजशास्त्री की भाँति वे प्रचलित रिवाजों, व्यवस्थाओं, अपने समय के मनुष्यों की प्रवृत्तियों और दुष्प्रवृत्तियों का विवरण तथा विश्लेषण करते

पुरुषवादी व्यवस्था की सारी संकीर्णता तोड़ कर वे और उनके कालिदास जैसे अनुयायी स्त्री के लिए जगह तलाशते हैं। यह जगह कई बार उसे पुरुष की बराबरी के दर्जे तक ले आती है। वात्स्यायन की व्यवस्था में पति या प्रेमी स्त्री का अभिभावक या गुरु भी है।

हैं, उनकी संस्तुति या असंस्तुति नहीं करते। डा. धर्मवीर ने जिस पारदारिक प्रकरण का हवाला दिया है, उसमें वात्स्यायन ने बहुत सूक्ष्मता से उन सारे कारणों का खुलासा किया है, जिनसे प्रेरित हो कर कोई पुरुष परस्त्री से संबंध बनाता है। यह उनके समय की वस्तुस्थितियों का बयान है। ऐसे संबंध बनाना उचित है या अनुचित यह वात्स्यायन के विचारपरिधि का विषय नहीं है। यह धर्मशास्त्र या क़ानून की विचारपरिधि में आता है। धर्मवीर को यह भ्रांति है कि धर्मशास्त्र या क़ानून के विधान बनाने वालों ने परस्त्रीगमन के लिए सजाएँ निर्धारित नहीं की है। वस्तुस्थिति यह है कि स्मृतिकारों के परस्त्रीगमन तथा बलात्कार दोनों के लिए दण्डविधान बहुत स्पष्ट हैं।

वात्स्यायन जहाँ दस्तावेज़ीकरण करते हुए परस्त्रीगमन या जारकर्म के अपने समय में प्रचलित तरीक़ों का ब्यौरा देते हैं, तो धर्मवीर को लगता है कि वे इनके पक्ष में वकालत कर रहे हैं, और वे मान लेते हैं कि 'कामसूत्रकार के लिए भारत का सारा संसार जारमय हो गया है।'[22] जब वात्स्यायन संस्तुति करते हैं कि परस्त्रीगमन जैसी बुराई से मनुष्य को बचना चाहिए, तो धर्मवीर को यह दिखावे का उपदेश लगता है : 'दूसरों की ज़ुबान रोकने के लिए *कामसूत्र* में यह सलाह दी गयी है कि कोई भी बुद्धिमान पुरुष इस बुरे कर्म में प्रवृत्त होने की इच्छा न करे, पर यह ख़ालिस मुँह दिखावे का उपदेश है। उपदेशक अपनी बात कहकर चलता बना, पर कामसूत्र में मजिस्ट्रेट कहाँ हैं, जो परस्त्रीगमन के लिए दण्ड देगा? ...[23]

[22] वही : 40.

[23] वही : 41.

19_radhaballav_Layout 1 5/1/2014 4:12 PM Page 257

मजिस्ट्रेट हैं, और वात्स्यायन ने उनको अपने सारे शास्त्र से ऊपर का दर्जा दिया है।

धर्मवीर की *कामसूत्र* से अपेक्षाएँ इतनी बड़ी हैं कि न केवल उसे परस्त्रीगमन आदि अपराधों पर दण्ड की व्यवस्था वाला ग्रंथ होना चाहिए था, बल्कि उसमें इतनी ताक़त होनी चाहिए थी कि वह 'विदेशी हमलावरों को सीमाओं पर ही वापस कर देता।'[24]

धर्मवीर की दृष्टि से वात्स्यायन के समाज में परस्त्रीगमन के लिए सारी व्यवस्थाएँ तैयार हैं, तथा बलात्कार के लिए कोई सज़ा नहीं है और इन सारी बुराइयों की जड़ यह है कि द्विजों के धर्मशास्त्र और वात्स्यायन के शास्त्र में तलाक़ और पुनर्विवाह की व्यवस्था नहीं है।[25]

धर्मशास्त्र या क़ानून के ग्रंथों में तलाक़ के लिए व्यवस्था की गयी है। धर्मवीर को भ्रांति है कि तलाक़ के लिए संस्कृत में शब्द नहीं है। वे इस बात को बार-बार आग्रहपूर्वक दोहराते हैं।[26] विवाह-विच्छेद के प्रसंगों में धर्मशास्त्र के लेखकों ने तलाक़ के ही लिए मोक्ष शब्द का प्रयोग किया है। यह मानना ग़लत है कि प्राचीन न्यायव्यवस्था में तलाक़ का कोई विधान नहीं था। यह सत्य है कि विवाह-संबंध दो व्यक्तियों के बीच का संबंध न हो कर एक सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक व आनुष्ठानिक संबंध माना गया और विधिपूर्वक विहित विवाहों में संबंधविच्छेद की सामान्यतया अनुमति नहीं हो सकती थी। तथापि धर्मशास्त्र के आचार्य, अर्थशास्त्रकार कौटिल्य और वात्स्यायन ये सब वैवाहिक संबंधों के विच्छेद के विधान के लिए मोक्ष शब्द का प्रयोग करते हैं। जिस तरह वात्स्यायन की शब्दावली में धर्म शब्द का संबंध आज के अर्थ में हिंदू धर्म से क़तई नहीं है, उसी तरह यहाँ जो मोक्ष शब्द आया है, उसका संबंध वेदांत या अन्य दर्शनों की मुक्ति से क़तई नहीं है। मोक्ष या तलाक़ का विधान स्त्री और पुरुष दोनों के लिए हैं। मनु ने कटुभाषिणी स्त्री से मोक्ष ले लेने की संस्तुति की है।[27]

कौटिल्य ने *अर्थशास्त्र* में विशेष स्थितियों में पति और पत्नी के बीच मोक्ष (तलाक़) का विधान दिया है। याज्ञवल्क्य, कौटिल्य या वात्स्यायन पुनर्भूः अथवा मोक्षप्राप्त (तलाक़शुदा) स्त्री का पुनर्विवाह प्रस्तावित करते हैं, अलबत्ता इसके लिए वैदिक रीति से अनुष्ठान करवाए जाने का उल्लेख नहीं करते।

जो वात्स्यायन मनु आदि सारे धर्मशास्त्रकारों के प्रतिरोध में खड़े हो कर सारे विवाहों मे गांधर्वविवाह को श्रेष्ठ इसी आधार पर बताते हैं कि प्रेम तो उसी में फलता है, तथा विवाहिता स्त्री को पति का प्रेम न मिलने पर जिस पुरुष से प्रेम मिले उसके पास चले जाने की वे सलाह दे देते हैं, उनके लिए धर्मवीर की टिप्पणी है कि पूरे *कामसूत्र* में उन्हें प्रेम का कहीं पता न चला।[28]

चूँकि वात्स्यायन ने अपनी दस्तावेज़ीकरण या शंसन की पद्धति का पालन करते हुए परस्त्रीगमन के सामाजिक, राजनीतिक कारणों का खुलासा किया है, इसलिए धर्मवीर ने उन्हें परस्त्रीगमन का समर्थक मान लिया है। वे कहते हैं कि 'परस्त्रीगमन के मामले में वात्स्यायन के मन में कोई नैतिक संकोच नहीं है। किसी क़िस्म का नहीं है, क्योंकि इस अपराध के लिए किसी दण्ड का ज़िक्र नहीं है।' (पृ. 37) कामसूत्र दण्डनीति का ग्रंथ नहीं है। वात्स्यायन धर्म या क़ानून को समस्त काम-व्यवहार के ऊपर रखते हैं, और धर्मशास्त्र क़ानून में परस्त्रीगमन के लिए दण्ड का प्रावधान है, तो वे उसे अमान्य कैसे कर सकते हैं। स्त्री के साथ बलात्कार करने वाले को दृढ़ता के साथ कात्यायन अनिवार्यतः प्राणदण्ड देने के

[24] वही : 54.

[25] वही : 12-13.

[26] 'सच बात यह है कि संस्कृत भाषा में तलाक़ के अर्थ का कोई शब्द नहीं है। यदि संस्कृत भाषा में तलाक़ के लिए शब्द होता, तो बुद्ध को घर छोड़ कर भागना न पड़ता। ... संस्कृत भाषा में तलाक़ और डाइवोर्स के अर्थ का शब्द नदारद है।', *कामसूत्र की संतानें* : 15.

[27] मनुस्मृति, 9.81.

[28] *कामसूत्र की संतानें* : 27.

19_radhaballav_Layout 1 5/1/2014 4:12 PM Page 258

पक्ष में हैं : स्त्रीषु कृतोपभोगः स्यात् प्रसह्य पुरुषो यदा वधे तत्र प्रवर्तेत। (*कात्यायन स्मृति,* 830)

जब कि आपस्तम्ब शूद्र को आर्या से सम्भोग करने पर प्राणदण्ड देने के पक्ष में हैं : वध्यः शूद्र आर्यायाम् (*आपस्तम्ब धर्मसूत्र,* 2.10.9)। मनु स्वैरिणी स्त्री को कुत्तों से खिला कर मार डालने का निर्देश देते हैं (3.37), जब कि कात्यायन इस विषय में भी बहुत उदार हैं। वे राजा को निर्देश देते हैं कि ऐसी स्त्री को उसका दुष्कर्म घोषित कर के छोड़ दे।

इस सत्य को हथियार बना कर वात्स्यायन पर हमला करना बेमानी है कि उनका *कामसूत्र* पुरुषप्रधान व्यवस्था की उपज है। इसके साथ ही, यह कहना वात्स्यायन के पक्ष में सफ़ाई नहीं, बल्कि सच्चाई है कि पुरुषवादी व्यवस्था की सारी संकीर्णता को तोड़ कर वे और उनके कालिदास जैसे अनुयायी स्त्री के लिए जगह तलाशते हैं। यह जगह कई बार उसे पुरुष की बराबरी के दर्जे तक ले आती है। वात्स्यायन की व्यवस्था में पति या प्रेमी स्त्री का अभिभावक या गुरु भी है। वात्स्यायन का आदर्श यही है कि यह पति या प्रेमी कामशास्त्र सीखा हुआ या *कामसूत्र* पढ़ा हुआ हो, और पत्नी या प्रेमिका को भी सिखाने का जतन करता रहे। *कुमारसम्भव* में कालिदास शिव और पार्वती के विवाहोत्तर मिलन के प्रसंग में कहते हैं कि पार्वती ने एकांत में शिव से निधुवन या सम्भोगविधि एक शिष्या की तरह जो सीखी, उसमें एक युवती की निपुणता मिला कर उन्होंने उसे शिव को ही गुरुदक्षिणा के रूप में लौटा दिया।[29] अजविलाप में दिवंगत इंदुमती के लिए कालिदास नायक के मुख से कहलवाते हैं :

गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ।
करुणाविमुखेन मृत्युना हरता त्वां वद किं न मे हृतम्।।

गृहिणी भी तुम, सचिव (सलाहकार) भी तुम,
उसके साथ सखी भी तुम,
ललितकलाओं की विधि में प्रियशिष्या भी तुम।
करुणाविमुख मृत्यु ने तुम्हें छीन कर
क्या कुछ मुझ से छीन नहीं लिया है?

मेरी समझ से अज चूँकि अपनी पत्नी की मृत्यु पर विलाप करते हुए यह कह रहा है, इसलिए उसकी स्मृति में इंदुमती के साथ उसके संबंध विपरीत क्रम में आये हैं। सबसे बाद वाली स्थिति सबसे पहले और इसी व्युत्क्रम में सबसे पहली की स्थिति उसे सबसे बाद में याद आती है। पति के साथ पत्नी के संबंधों का अंतिम पड़ाव उसका गृहिणी होने में है, जिसकी शुरुआत प्रिय शिष्या बनने से होती है। शिष्या, सखी, सलाहकार और गृहिणी क्रमशः ये सीढ़ियाँ हैं। इनमें गृहिणी का दर्जा सखी और सलाहकार से भी ऊपर का है। वात्स्यायन के कामसूत्र में भी स्त्री होने की सर्वाधिक प्रतिष्ठा उसके गृहिणी हो पाने में है।

[29] *कुमारसम्भव,* 8 :17.